

महंत राम सरूप दासजी

1959

बनाम

अपील 15

एस. पी. साही, हिंदू धार्मिक न्यास के विशेष प्रभारी-अधिकारी

एवं अन्य

(एस. आर. दास, मुख्य न्यायाधीश; एस. के. दास, पी. बी. गजेंद्रगडकर, के. एन. वांचू तथा

एम. हिदायतुल्लाह, न्यायमूर्तिगण)

हिंदू धार्मिक न्यास — निजी न्यास — बिहार हिंदू धार्मिक न्यास अधिनियम की प्रयोज्यता — धार्मिक विन्यास, सार्वजनिक एवं निजी — उनके बीच अंतर — “धार्मिक न्यास” की परिभाषा — दायरा एवं प्रभाव — बिहार हिंदू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 (बिहार अधिनियम सं० 1, 1951), धाराएँ 2(1), 4(5), 30(1), 32, 48।

अपीलकर्ता, जो सलौना स्थल के महंत थे, ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय में एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें अन्य बातों के साथ यह प्रार्थना की गई कि बिहार राज्य धार्मिक न्यास समिती द्वारा पारित उस आदेश को अभिखंडित किया जाए, जिसके अंतर्गत अपीलकर्ता को बिहार हिंदू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 की धारा 59 के अधीन आय एवं व्यय का विवरण प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया गया था, इस आधार पर, अन्य बातों के साथ कि सलौना स्थल एक निजी संस्थान है और अधिनियम के अर्थ में धार्मिक न्यास नहीं है तथा उक्त अधिनियम निजी न्यासों पर लागू नहीं होता। उच्च न्यायालय ने यह अभिमत व्यक्त किया कि अधिनियम की धारा 2(1) की भाषा, जिसमें धार्मिक न्यास की परिभाषा दी गई है, इतनी व्यापक है कि वह हिंदू विधि द्वारा मान्यता प्राप्त निजी एवं सार्वजनिक दोनों प्रकार के न्यासों को अपने दायरे में समाहित करती है, तथा सलौना स्थल उक्त धारा द्वारा मान्य किसी भी अपवाद के अंतर्गत नहीं आता।

*अभिनिर्धारित*, कि अधिनियम के प्रावधानों की वास्तविक एवं यथोचित व्याख्या, जो भारत में धार्मिक, परोपकारी अथवा पूर्त न्यासों के संबंध में पूर्ववर्ती विधायी इतिहास की पृष्ठभूमि में की गई है, से यह स्पष्ट होता है कि अधिनियम की धारा 2(1) में निहित परिभाषा प्रावधान के अंतर्गत निजी न्यास सम्मिलित नहीं हैं तथा अधिनियम के प्रावधान ऐसे न्यासों पर लागू नहीं होते।

हिंदू विधि में सार्वजनिक एवं निजी धार्मिक दानों के मध्य मूलभूत अंतर यह है कि सार्वजनिक न्यास में लाभकारी हित एक अनिश्चित एवं परिवर्तनशील व्यक्तियों के समूह में निहित होता है, जो या तो समस्त जनसामान्य होते हैं अथवा उसका कोई पर्याप्त भाग, जो किसी विशेष वर्णन के अंतर्गत आता है; जबकि निजी न्यास में लाभार्थी निश्चित एवं पहचाने गए व्यक्ति होते हैं अथवा ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें एक निश्चित समय के भीतर निश्चित रूप से पहचाना जा सकता है। यह तथ्य कि वह अनिश्चित एवं परिवर्तनशील व्यक्तियों का समूह किसी विशेष धार्मिक विश्वास का अनुयायी जनसमुदाय हो अथवा किसी विशिष्ट धार्मिक मत के व्यक्तियों का एक वर्ग मात्र हो, इस विषय में कोई अंतर उत्पन्न नहीं करता और न ही इससे न्यास को निजी न्यास माना जा सकता है।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: दीवानी अपील सं० 343/1955।

पटना उच्च न्यायालय द्वारा विविध न्यायिक वाद सं० 39/1954 में दिनांक 13 सितंबर, 1954 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध अपील।

एल. के. झा, बी. के. पी. सिन्हा तथा आर. जी. प्रसाद, अपीलकर्ता की ओर से।

बिहार राज्य की ओर से महावीर प्रसाद, महाधिवक्ता, ईश्वरी नंदन प्रसाद तथा एस. पी. वर्मा, उत्तरदाताओं की ओर से।

1959, अप्रैल 15। न्यायालय का निर्णय जिनके द्वारा प्रविन्यास किया गया।

एस. के. दास, न्यायमूर्ति— यह अपील, पटना उच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त प्रमाणपत्र के आधार पर, उक्त उच्च न्यायालय के दिनांक 13 सितंबर, 1954 के निर्णय के विरुद्ध है, जो उस न्यायालय में विविध न्यायिक वाद सं० 39/1954 के रूप में अंकित एक रिट कार्यवाही में पारित किया गया था, जिसे अपीलकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन प्रस्तुत आवेदन पर, नीचे उल्लिखित परिस्थितियों में, संस्थित किया था।

यह आरोप लगाया गया कि एक महात्मा मस्त रामजी, जो एक हिंदू संत थे, बिहार राज्य के मौघिर जिले में पर्याप्त संपत्तियों के स्वामी एवं धारक थे। लगभग दो सौ वर्ष पूर्व उन्होंने सलौना में एक छोटा मंदिर निर्मित कराया, जिसमें उन्होंने श्री ठाकुर लक्ष्मी नारायणजी नामक देवता की स्थापना की। यह मंदिर सलौना स्थल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मस्त रामजी का निधन लगभग सन् 1802 के आसपास हुआ। उनके पश्चात उनके कुछ शिष्यों ने क्रमशः उत्तराधिकार प्राप्त किया, जिनमें से एक महंत लक्ष्मी दासजी थे। उन्होंने सन् 1916 में एक नया मंदिर निर्मित कराया, जिसमें पुराने मंदिर से देवता को स्थानांतरित कर दो नए देवताओं, श्री राम एवं सीता, की स्थापना की। सन् 1919 में महंत लक्ष्मी दासजी का निधन हो गया। उनके तीन शिष्य थे— विष्णु दास, भगवत दास तथा रमेश्वर दास। इन शिष्यों के बीच गद्दी के उत्तराधिकार को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ, जिसका निपटारा फरवरी 1919 के आसपास किया गया। उस समझौते के अनुसार यह निर्धारित किया गया कि विष्णु दास, महंत लक्ष्मी दास के पश्चात शेषायत होंगे, उनके पश्चात भगवत दास होंगे, तथा उसके बाद स्थल का सर्वाधिक योग्य 'बैरागी', जो ब्राह्मण कुल में जन्मा हो, शेषायत नियुक्ति हेतु पात्र होगा। भगवत दास का निधन लगभग सन् 1935 में हुआ और पुनः एक विवाद उत्पन्न हुआ, जो महंत लक्ष्मी दास के सबसे छोटे चले रमेश्वर दास तथा वर्तमान महंत एवं हमारे समक्ष अपीलकर्ता राम सरूप दास के मध्य

था। प्रतीत होता है कि रमेश्वर दास ने पूर्त तथा धार्मिक न्यास अधिनियम (1920 का 14) के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें महंत राम सरूप दास को स्थल की भोगाधिकार के संबंध में लेखा प्रस्तुत करने हेतु निर्देश देने की प्रार्थना की गई। इस आवेदन का प्रतिवाद महंत राम सरूप दास द्वारा किया गया, जिन्होंने यह कहा कि सलौना स्थल से संबंधित संपत्तियां पूर्त तथा धार्मिक न्यास अधिनियम (1920 का 14) के प्रावधानों के अर्थ में सार्वजनिक न्यास नहीं हैं, अतः वे किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। महंत राम सरूप दास ने उक्त अधिनियम की धारा 5 के अधीन अनुमति प्राप्त कर यह वाद दायर किया कि सलौना स्थल तथा उससे संबंधित संपत्तियां सार्वजनिक न्यास नहीं हैं। यह वाद मोंघिर के अवर न्यायाधीश की न्यायालय में प्रस्तुत किया गया, जिसने वाद को निरस्त कर दिया। इसके पश्चात पटना उच्च न्यायालय में अपील दायर की गई और प्रथम अपील सं० 10/1941 में दिनांक 5 मार्च, 1943 को पारित निर्णय एवं डिक्री द्वारा उच्च न्यायालय ने यह घोषित किया कि सलौना स्थल तथा उससे संबंधित संपत्तियां पूर्त तथा धार्मिक न्यास अधिनियम (1920 का 14) के अर्थ में सार्वजनिक न्यास नहीं हैं। लगभग आठ वर्ष पश्चात बिहार हिंदू धार्मिक न्यास अधिनियम, 1950 (बिहार 1/1951), जिसे आगे 'अधिनियम' कहा गया है, बिहार विधानमंडल द्वारा अधिनियमित किया गया तथा 21 फरवरी, 1951 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई। यह अधिनियम 15 अगस्त, 1951 से प्रभावी हुआ। इस अधिनियम के अंतर्गत बिहार राज्य धार्मिक न्यास समिती (जो हमारे समक्ष उत्तरदाताओं में से एक है) का गठन किया गया, जिसका कार्य जैन धार्मिक न्यासों को छोड़कर अन्य धार्मिक न्यासों के संबंध में अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के अधीन सौंपे गए कर्तव्यों का निर्वहन करना है। दिनांक 14 नवम्बर, 1952 को उक्त समिती ने अधिनियम की धारा 59 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपीलकर्ता को निर्देश दिया कि वह स्थल की आय एवं व्यय का विवरण समिती के समक्ष प्रस्तुत करे। अपीलकर्ता ने दिनांक 1 दिसम्बर, 1952 के

पत्र द्वारा उत्तर दिया कि सलौना स्थल एक निजी संस्थान है, जिस पर अधिनियम लागू नहीं होता, तथा उसने प्रथम अपील सं० 10/1941 में पारित उच्च न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री की ओर भी समिती का ध्यान आकर्षित किया। किन्तु समिती ने यह उत्तर दिया कि वह उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उक्त घोषणा से बाध्य नहीं है तथा अपीलकर्ता से यह कहा कि वह अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत अपने दावे के संबंध में घोषणा प्राप्त करे अथवा आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत करे। इसके पश्चात दिनांक 22 जनवरी, 1954 को अपीलकर्ता ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपना आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें उसने यह अभ्यर्थित किया कि (क) सलौना स्थल अधिनियम के अर्थ में धार्मिक न्यास नहीं है; (ख) उससे संबंधित संपत्तियां धार्मिक न्यास नहीं हैं तथा अपीलकर्ता अधिनियम के अर्थ में न्यासी नहीं है; (ग) अधिनियम निजी न्यासों पर लागू नहीं होता; तथा (घ) उत्तरदाताओं समिती द्वारा की गई मांग, अपीलकर्ता के स्थल की संपत्तियों को धारण करने के मौलिक अधिकार में हस्तक्षेप है। अतः अपीलकर्ता ने प्रार्थना की कि उत्तरदाताओं समिती द्वारा पारित उस आदेश को अभिखंडित करने हेतु रिट जारी की जाए, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को आय एवं व्यय का विवरण प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था, तथा यह भी आदेश दिया जाए कि उत्तरदाताओं समिती एवं उसके अधिकारी, सलौना स्थल तथा उससे संबंधित संपत्तियों के प्रबंधन में अपीलकर्ता के अधिकार में हस्तक्षेप करने से विरत रहें।

पटना उच्च न्यायालय ने अपने विवादित निर्णय द्वारा याचिका को इस मुख्य आधार पर निरस्त कर दिया कि अधिनियम की धारा 2(1) की भाषा, जिसमें अधिनियम के प्रयोजनों हेतु "धार्मिक न्यास" की परिभाषा दी गई है, इतनी व्यापक है कि वह हिंदू विधि द्वारा मान्यता प्राप्त निजी एवं सार्वजनिक दोनों प्रकार के धार्मिक, पूर्त अथवा परोपकारी न्यासों को अपने दायरे में समाहित करती है, तथा सलौना स्थल उक्त धारा द्वारा मान्य दो अपवादों में से किसी के अंतर्गत

नहीं आता, अर्थात् (1) सिख धर्म के अनुसार निर्मित या केवल सिख समुदाय के लाभ हेतु स्थापित न्यास; तथा (2) पारिवारिक देवता की पूजा हेतु निर्मित ऐसा निजी विन्यास, जिसमें जनता की कोई रुचि न हो। उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित व्यक्त किया कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री इस प्रश्न के निर्णय हेतु पर्याप्त नहीं है कि सलौना स्थल तथा उससे संबंधित संपत्तियां सार्वजनिक स्वरूप के धार्मिक न्यास हैं या नहीं; तथापि इस आधार पर कि अधिनियम निजी न्यासों पर भी लागू होता है, यह मत व्यक्त किया गया कि अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों द्वारा न्यासी पर लगाए गए प्रतिबंध संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) के अंतर्गत प्रदत्त मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं करते, क्योंकि ऐसा कोई विधिक कारण नहीं है कि राज्य निजी न्यासों के प्रशासन पर भी उसी प्रकार पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण न रख सके, जैसा कि सार्वजनिक न्यासों के मामले में होता है। दिनांक 5 अक्टूबर, 1953 के एक निर्णय में, जिसमें पूर्ववर्ती कुछ वादों में इसी प्रश्न पर विचार किया गया था, उच्च न्यायालय ने तथापि कुछ भिन्न दृष्टिकोण व्यक्त किया था। उस समय यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया था कि जब सीमित विधायी अधिकार वाला विधानमंडल किसी व्यापक एवं सामान्य अर्थ वाले शब्द का प्रयोग करता है, तो यह अनुमान किया जाना चाहिए कि वह शब्द उसी सीमा तक प्रयुक्त किया गया है, जिस सीमा तक वह विधि निर्माण करने में सक्षम है। इस सिद्धांत को अपनाते हुए यह कहा गया कि अधिनियम की धारा 2(1) को सीमित अर्थ में पढ़ा जाना चाहिए, जिससे वह केवल सार्वजनिक स्वरूप के हिंदू धार्मिक अथवा पूर्त न्यासों को ही समाहित करे, और तदनुसार अधिनियम के प्रावधान केवल ऐसे न्यासों पर ही लागू होंगे।

अपीलकर्ता की ओर से हमारे समक्ष प्रमुख रूप से जो प्रश्न उठाया गया है, वह निर्वचन का है—क्या अधिनियम के प्रावधान निजी धार्मिक न्यासों पर लागू होते हैं? अपीलकर्ता का यह तर्क है कि वे लागू नहीं होते। इस चरण पर अधिनियम के कुछ प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लेख

करना आवश्यक है। संबद्ध दीवानी अपील सं० 225, 226, 228, 229 तथा 248/1955<sup>1</sup> में, जिनमें आज ही हम निर्णय दे रहे हैं, अधिनियम के प्रावधानों का कुछ अधिक विस्तार से उल्लेख किया गया है। वर्तमान अपील में हम केवल उन्हीं प्रावधानों का उल्लेख करेंगे, जिनका इस मुख्य प्रश्न से संबंध है।

हम धारा 2(1) में निहित परिभाषा प्रावधान से प्रारंभ करते हैं। इसमें कहा गया है—

“ ‘धार्मिक न्यास’ से अभिप्राय किसी भी ऐसे प्रत्यक्ष या निहित न्यास से है, जो किसी ऐसे उद्देश्य के लिए सृजित या विद्यमान हो, जिसे हिंदू विधि के अनुसार धार्मिक, पुण्य या पूर्य माना गया हो; किन्तु इसमें ऐसा न्यास सम्मिलित नहीं होगा, जो सिख धर्म के अनुसार निर्मित हो या केवल सिख समुदाय के लाभ हेतु हो, तथा ऐसा निजी विन्यास, जो पारिवारिक देवता की पूजा के लिए निर्मित हो और जिसमें जनता की कोई रुचि न हो;”

धारा 2(पी) में ‘न्यास संपत्ति’ का अर्थ धार्मिक न्यास से संबंधित संपत्ति है तथा धारा 2(एन) में ‘न्यासी’ पद को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है—

“ ‘न्यासी’ से अभिप्राय ऐसे किसी भी व्यक्ति से है, जिसे किसी भी नाम से जाना जाता हो, जो किसी धार्मिक न्यास का प्रशासन करने हेतु या तो मौखिक रूप से अथवा किसी विलेख या साधन द्वारा या उसके अधीन अथवा ऐसे न्यास की प्रचलित प्रथा के अनुसार या जिला न्यायाधीश अथवा किसी अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किया गया हो, और इसमें वह व्यक्ति भी सम्मिलित है जिसे किसी न्यासी द्वारा न्यासी के कर्तव्यों का निर्वहन करने हेतु नियुक्त किया गया हो, तथा किसी समिति का कोई सदस्य अथवा कोई अन्य व्यक्ति, जो उस समय किसी न्यास संपत्ति का प्रबंधन या प्रशासन कर रहा हो।”

1 (1) महंत मोती दास बनाम एस. पी. साहि, देखिए पृष्ठ 563 पूर्वोक्त।

हमारे उद्देश्य के लिए अगली महत्वपूर्ण धारा धारा 4 है, जिसे बिहार अधिनियम सं० 16/1954 द्वारा संशोधित किया गया, जो कुछ संशोधनों एवं निरसन को प्रभावी बनाती है। धारा 4 की उपधारा (5) इस प्रकार है—

“धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1863 (1863 का 20) तथा दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की धारा 92, इस अधिनियम में परिभाषित राज्य के किसी भी धार्मिक न्यास पर लागू नहीं होगी।”

अधिनियम के अध्याय V में अनेक धाराएँ हैं, जो राज्य धार्मिक न्यास समिती की शक्तियों एवं कर्तव्यों को निर्धारित करती हैं। धारा 28, जो इस अध्याय की प्रारंभिक धारा है, समिती की सामान्य शक्तियों एवं कर्तव्यों का उल्लेख करती है। धारा 29(1) का हमारे समक्ष विचाराधीन प्रश्न से संबंधित है। इसमें, *अन्य बातों के साथ*, यह प्रावधान है कि जहाँ किसी धार्मिक न्यास का पर्यवेक्षण संस्थापक द्वारा अथवा किसी सक्षम न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किसी समिति या संघ के अधीन निहित हो, वहाँ ऐसी समिति या संघ, इस धारा की उपधारा (2) के अधीन समिती द्वारा अधिस्थगित किए जाने तक, समिती के सामान्य पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण के अधीन कार्य करता रहेगा। यदि अधिक्रमण का आदेश पारित किया जाता है, तो समिति या संघ अथवा धार्मिक न्यास में हित रखने वाला कोई भी अन्य व्यक्ति, उक्त उपधारा (2) के अधीन समिती के आदेश के विरुद्ध 30 दिनों के भीतर जिला न्यायाधीश के समक्ष उस आदेश को परिवर्तित, संशोधित या निरस्त करने हेतु आवेदन कर सकता है। धारा 30, जहाँ तक हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, यह प्रावधान करती है—

“ जब किसी धार्मिक न्यास का कोई उद्देश्य समाप्त हो गया हो अथवा समिती की दृष्टि में उसकी प्राप्ति असंभव हो गई हो, तब समिती स्वयं अथवा किसी हिंदू के आवेदन पर, विधि द्वारा निर्दिष्ट रीति से ऐसे न्यास के न्यासी तथा उन अन्य व्यक्तियों को, जिन्हें समिती संबंधित समझे,

सूचना देने के पश्चात तथा आवश्यक जाँच करने के उपरांत, ऐसे उद्देश्य का निर्धारण कर सकता है (जो उस उद्देश्य के समान अथवा यथासंभव उसके निकटतम हो, जो समाप्त हो गया है अथवा जिसकी प्राप्ति असंभव हो गई है), जिसके लिए न्यास की निधि, संपत्ति अथवा आय, अथवा उसका वह भाग, जो पूर्व में उस उद्देश्य पर व्यय या प्रयुक्त किया जाता था, प्रयुक्त किया जाएगा।” धारा 32 धार्मिक न्यासों के उचित प्रशासन हेतु योजनाएँ निर्धारित करने की समिती की शक्ति को परिभाषित करती है। इसमें कहा गया है—

“32(1). समिती, स्वयं की पहल पर अथवा किसी धार्मिक न्यास में हित रखने वाले दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा इस संबंध में किए गए आवेदन पर—

(क) ऐसे धार्मिक न्यास के लिए, आवश्यक जाँच करने के उपरांत तथा उस न्यास के न्यासी एवं उन अन्य व्यक्तियों को, जिन्हें समिती संबंधित समझे, सूचना देकर, एक योजना निर्धारित कर सकता है;

(ख) इसी प्रकार तथा समान शर्तों के अधीन, इस धारा या किसी अन्य विधि के अधीन निर्धारित किसी योजना में संशोधन कर सकता है अथवा उसके स्थान पर अन्य योजना स्थापित कर सकता है:

बशर्त कि इस प्रकार निर्धारित, संशोधित या प्रतिस्थापित कोई भी योजना, न्यास को नियंत्रित करने वाली विधि के अनुरूप होगी तथा संस्थापक की इच्छाओं के प्रतिकूल नहीं होगी, जहाँ तक ऐसी इच्छाएँ ज्ञात की जा सकती हों।

(2) इस धारा के अधीन किसी अन्य योजना के स्थान पर निर्धारित, संशोधित या प्रतिस्थापित योजना, यदि उपधारा (3) के अधीन किसी आवेदन पर जिला न्यायाधीश द्वारा अन्यथा आदेश न दिया जाए, तो समिती द्वारा इस संबंध में निर्धारित तिथि से प्रभावी होगी तथा इसे राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा।”

(3) ऐसे न्यास का न्यासी अथवा उसमें हित रखने वाला कोई अन्य व्यक्ति, राजपत्र में प्रकाशित ऐसी योजना, जो निर्धारित, संशोधित या प्रतिस्थापित की गई हो, के प्रकाशन की तिथि से तीन माह के भीतर जिला न्यायाधीश के समक्ष योजना को परिवर्तित, संशोधित या निरस्त करने हेतु आवेदन कर सकता है; किन्तु ऐसे आवेदन के परिणाम के अधीन रहते हुए, उपधारा (1) एवं (2) के अधीन समिती का आदेश धार्मिक न्यास के न्यासी तथा उसमें हित रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर अंतिम एवं बाध्यकारी होगा।

(4) उपधारा (3) के अधीन किए गए किसी आवेदन पर जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश अंतिम होगा।" यहाँ यह उल्लेखनीय है कि "धार्मिक न्यास में हित रखने वाला व्यक्ति" अभिव्यक्ति की परिभाषा धारा 2(जी) में दी गई है, जो इस प्रकार है—

" 'धार्मिक न्यास में हित रखने वाला व्यक्ति' से अभिप्राय ऐसे किसी व्यक्ति से है, जो किसी धार्मिक न्यास से किसी आर्थिक अथवा अन्य लाभ का अधिकारी हो तथा इसमें सम्मिलित है—

(i) ऐसा कोई व्यक्ति जिसे पूजा करने या किसी अनुष्ठान के संपादन का अधिकार हो अथवा किसी धार्मिक संस्था में, जो ऐसे न्यास से संबंधित हो, किसी पूजा या अनुष्ठान में सम्मिलित होने का अधिकार हो अथवा ऐसे न्यास के अंतर्गत किसी धार्मिक या पूर्त सेवा में भाग लेने का अधिकार हो;

(ii) संस्थापक तथा उसके कोई वंशज; तथा

(iii) न्यासी।"

अब केवल एक अन्य धारा, जिसे पूर्ण रूप से उद्धृत किया जाना आवश्यक है, धारा 48 है, जो इस प्रकार है—

“48(1). समिती, अथवा समिती की पूर्व स्वीकृति से, किसी धार्मिक न्यास में हित रखने वाला कोई भी व्यक्ति, जिला न्यायाधीश के समक्ष निम्नलिखित आदेशों हेतु आवेदन कर सकता है—

(क) ऐसे धार्मिक न्यास के न्यासी को पद से हटाने के लिए, यदि ऐसा न्यासी—

(i) उक्त न्यास के हितों के प्रतिकूल आचरण करता हो; या

(ii) उक्त न्यास की संपत्ति या आय के संबंध में किसी प्रचलित विधि के अधीन देय किसी राशि अथवा ऐसी संपत्ति या आय पर लगाए गए किसी वैधानिक भार के भुगतान में तीन या अधिक अवसरों पर चूक करता हो; या

(iii) उक्त न्यास के अंतर्गत किसी लाभार्थी को देय किसी राशि के भुगतान में तीन या अधिक अवसरों पर चूक करता हो, अथवा उस पर आरोपित किसी अन्य कर्तव्य के निर्वहन में चूक करता हो; या

(iv) न्यास का उल्लंघन करने का दोषी हो;

(ख) नए न्यासी की नियुक्ति के लिए;

(ग) किसी संपत्ति को न्यासी में निहित करने के लिए;

(घ) लेखा प्रस्तुत करने तथा जाँच कराने के निर्देश देने के लिए; अथवा

(ङ) प्रकरण की प्रकृति के अनुसार आवश्यक अन्य या अतिरिक्त राहत प्रविन्यास करने के लिए।

(2) उपधारा (1) के अधीन जिला न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश अंतिम होगा।”

अब अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम के उपर्युक्त प्रावधानों की वास्तविक एवं यथोचित व्याख्या, जो भारत में धार्मिक, पूर्त अथवा पुण्य न्यासों के संबंध में पूर्ववर्ती विधायी इतिहास की पृष्ठभूमि में की जानी चाहिए, से यह स्पष्ट होता है कि

अधिनियम की धारा 2(1) में निहित परिभाषा प्रावधान केवल उन धार्मिक, पूर्त अथवा पुण्य न्यासों तक सीमित है, जो हिंदू विधि के अनुसार सार्वजनिक स्वरूप के रूप में मान्यता प्राप्त हैं। इस तर्क की सराहना के लिए यह आवश्यक है कि पहले हिंदू विधि में सार्वजनिक एवं निजी धार्मिक दानों के मध्य अंतर का उल्लेख किया जाए। संक्षेप में, मूलभूत अंतर यह है कि सार्वजनिक न्यास में लाभकारी हित एक अनिश्चित एवं परिवर्तनशील व्यक्तियों के समूह में निहित होता है, जो या तो समस्त जनसामान्य होते हैं अथवा उसका कोई पर्याप्त भाग, जो किसी विशेष वर्णन के अंतर्गत आता है; जबकि निजी न्यास में लाभार्थी निश्चित एवं पहचाने गए व्यक्ति होते हैं अथवा ऐसे व्यक्ति होते हैं जिन्हें एक निश्चित समय के भीतर निश्चित रूप से पहचाना जा सकता है। यह तथ्य कि वह अनिश्चित एवं परिवर्तनशील व्यक्तियों का समूह किसी विशेष धार्मिक विश्वास का अनुयायी जनसमुदाय हो अथवा किसी विशिष्ट धार्मिक मत के व्यक्तियों का एक वर्ग मात्र हो, इस विषय में कोई अंतर उत्पन्न नहीं करता और न ही इससे न्यास को निजी न्यास माना जा सकता (देखें — *नबी शिराजी बनाम बंगाल प्रांत*)<sup>1</sup>। इस संदर्भ में अंग्रेजी विधि एवं हिंदू विधि के मध्य अंतर को डॉ. मुखर्जी द्वारा उनके टैगोर विधि व्याख्यान, “हिंदू धार्मिक एवं पूर्त न्यास विधि” (1952 संस्करण, पृष्ठ 392-396) में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

“अंग्रेजी विधि में पूर्त न्यास सार्वजनिक न्यासों के समानार्थी होते हैं और जिसे धार्मिक न्यास कहा जाता है, वह केवल पूर्त न्यास का ही एक रूप होता है। पूर्त न्यास में लाभार्थी सामान्य जनता अथवा उसका कोई भाग होते हैं, न कि कोई निश्चित व्यक्तियों का समूह, अतः पूर्त न्यास के प्रवर्तन के उपाय, निजी न्यास के लाभार्थियों द्वारा अपनाए जा सकने वाले उपायों से भिन्न होते हैं। अंग्रेजी विधि में क्राउन, देश के पिता के रूप में, पूर्त न्यासों के अधीन संपत्ति का संवैधानिक संरक्षक होता है, क्योंकि ऐसे न्यास मूलतः सार्वजनिक महत्व के विषय होते हैं.....

1 (1) (1942) आई.एल.आर. 1 कलकत्ता 211, पृष्ठ 228।

अंग्रेजी विधि और भारतीय विधि के मध्य एक मूलभूत अंतर यह है कि हिंदू विधि के अंतर्गत निजी स्वरूप के धार्मिक न्यास संभव हैं, जबकि अंग्रेजी विधि में ऐसा संभव नहीं है।”

अपीलकर्ता की ओर से यह इंगित किया गया है कि जहाँ तक सार्वजनिक धार्मिक एवं पूर्त न्यासों का संबंध है, उनके प्रबंधन एवं प्रशासन के नियंत्रण के लिए सामान्य एवं स्थानीय, दोनों प्रकार के अनेक विधायी अधिनियम विद्यमान हैं, जो कुप्रशासन की स्थिति में उपचार भी प्रविन्यास करते हैं। जहाँ तक निजी धार्मिक न्यासों का संबंध है, उनके लिए कोई विशिष्ट वैधानिक अधिनियम उपलब्ध नहीं हैं तथा ऐसे न्यास देश की सामान्य विधि द्वारा विनियमित होते हैं। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के पश्चात, पूर्ववर्ती शासकों की परंपरा का अनुसरण करते हुए, सरकार ने अपनी संप्रभु शक्ति के आधार पर सार्वजनिक धार्मिक एवं पूर्त दानों का निरीक्षण करने तथा उनके प्रबंधन में दुरुपयोग को रोकने एवं सुधारने का अधिकार ग्रहण किया। इस उद्देश्य से बंगाल में सन् 1810 में विनियम (1810 का विनियम 19) पारित किया गया तथा मद्रास में सन् 1817 में विनियम (1817 का विनियम 7) लागू किया गया। बॉम्बे में भी इसी प्रकार का एक विनियम (1827 का विनियम 17) था, जो इसी प्रकार के दानों से संबंधित था। सन् 1863 में धार्मिक विन्यास अधिनियम (1863 का 20) पारित किया गया, जिसने बंगाल एवं मद्रास के उक्त विनियमों को, जहाँ तक वे विशुद्ध धार्मिक संस्थानों से संबंधित थे, निरस्त कर दिया तथा उनका नियंत्रण राजस्व समिती से हटाकर अधिनियम, 1863 के अधीन गठित गैर-सरकारी समितियों को सौंप दिया गया। तथापि यह उल्लेखनीय है कि अधिनियम, 1863 केवल सार्वजनिक धार्मिक दानों पर ही लागू होता था। समय के साथ यह अनुभव किया गया कि सन् 1863 का अधिनियम सार्वजनिक धार्मिक न्यासों को दुरुपयोग से पर्याप्त संरक्षण प्रविन्यास नहीं करता, जिसके कारण उनके प्रबंधन पर राज्य नियंत्रण की आवश्यकता उत्पन्न हुई तथा उस अधिनियम द्वारा प्रदत्त उपचार पर्याप्त नहीं थे। इसके पश्चात धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1890

(1890 का 6) तथा पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920 (1920 का 16) अधिनियमित किए गए, जो दोनों ही सार्वजनिक न्यासों से संबंधित थे; पूर्व अधिनियम केवल धर्मोपदेश या पूजा से असंबद्ध पूर्त उद्देश्यों हेतु सार्वजनिक न्यासों पर लागू था, जबकि उत्तरवर्ती अधिनियम सार्वजनिक उद्देश्य वाले पूर्त अथवा धार्मिक न्यासों से संबंधित था। दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1877 में एक विशिष्ट धारा, अर्थात् धारा 539, जोड़ी गई थी, जिसके अंतर्गत सार्वजनिक धार्मिक या पूर्त उद्देश्यों के लिए सृजित किसी प्रत्यक्ष या निहित न्यास के उल्लंघन के मामलों में वाद दायर किया जा सकता था। इस धारा में बाद में संशोधन किया गया और संशोधित रूप में यह वर्तमान दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 92 बन गई, जिसमें किसी मामले को इसके क्षेत्राधिकार में लाने हेतु प्रथम आवश्यक शर्त यह है कि *सार्वजनिक* धार्मिक या पूर्त उद्देश्य के लिए कोई प्रत्यक्ष या निहित न्यास विद्यमान हो। यह संदेह से परे स्पष्ट है कि निजी न्यास, दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के संचालन से बाहर हैं। स्थानीय अधिनियमों में, सर्वप्रथम बंबई प्रेसीडेंसी का सन् 1863 का अधिनियम था। तत्पश्चात् हाल के वर्षों में उड़ीसा हिंदू धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1939; बंबई सार्वजनिक न्यास अधिनियम, 1950; तथा मद्रास हिंदू धार्मिक एवं पूर्त विन्यास अधिनियम, 1951 अधिनियमित किए गए, जो सभी सार्वजनिक धार्मिक संस्थानों एवं दानों से संबंधित हैं। हमारे संज्ञान में ऐसा कोई स्थानीय अधिनियम नहीं लाया गया है, जिसने स्पष्ट अथवा निर्विवाद रूप से निजी धार्मिक न्यासों को अपने दायरे में सम्मिलित करने का प्रयास किया हो।

अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया है कि यद्यपि अधिनियम की धारा 2(1) में परिभाषा प्रावधान व्यापक भाषा में व्यक्त किया गया है, तथापि अधिनियम के अन्य प्रावधान यह स्पष्ट करते हैं कि यह केवल सार्वजनिक न्यासों तक सीमित है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, अधिनियम की धारा 2(1) दो अपवादों को मान्यता देती है: प्रथम, सिख धर्म के

अनुसार निर्मित या केवल सिख समुदाय के लाभ हेतु स्थापित न्यास; तथा द्वितीय, पारिवारिक देवता की पूजा के लिए निर्मित ऐसा निजी विन्यास, जिसमें जनता की कोई रुचि न हो। यह विवादित नहीं है कि दूसरा अपवाद एक निजी न्यास का उदाहरण है, जिसमें जनता की कोई रुचि नहीं होती। उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि चूँकि परिभाषा प्रावधान में अपवाद के रूप में केवल एक प्रकार के निजी विन्यास का उल्लेख किया गया है, अतः *पारिवारिक देवता की पूजा के अतिरिक्त अन्य प्रकार के सभी निजी विन्यास, एक का उल्लेख अन्य का बहिष्कार के सिद्धांत के आधार पर, परिभाषा के अंतर्गत सम्मिलित माने जाएंगे।* हम यह नहीं मानते कि यह दृष्टिकोण पूर्णतः सही है। सर्वप्रथम, अधिनियम के कुछ अन्य प्रावधानों का परीक्षण किया जाए, जो परिभाषा प्रावधान का विशेष रूप से संदर्भ देते हैं, तथा यह देखा जाए कि स्वयं विधायिका ने उसका क्या अभिप्राय ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ, अधिनियम की धारा 4, जिसे बिहार अधिनियम सं० 16/1954 द्वारा संशोधित किया गया है, का अवलोकन किया जा सकता है। यह धारा कुछ पूर्ववर्ती अधिनियमों, जैसे धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1890 तथा पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920 में संशोधन एवं निरसन करती है, जो, जैसा कि पूर्व में उल्लेखित किया गया है, केवल सार्वजनिक न्यासों से संबंधित थे। धारा 4 की उपधारा (5) यह प्रावधान करती है कि धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1863 तथा दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92, इस अधिनियम में परिभाषित राज्य के किसी भी धार्मिक न्यास पर लागू नहीं होगी। उक्त दोनों अधिनियम केवल सार्वजनिक न्यासों पर लागू होते हैं; उनका निजी न्यासों पर कोई प्रयोग नहीं होता। यदि परिभाषा प्रावधान का अभिप्राय यह होता कि उसमें पारिवारिक देवता की पूजा हेतु निर्मित निजी विन्यास को छोड़कर अन्य निजी न्यास भी सम्मिलित हैं, तो यह समझना कठिन होता कि धारा 4 की उपधारा (5) को इस प्रकार क्यों शब्दबद्ध किया गया है। यह उपधारा वस्तुतः यह कहती है कि दो पूर्ववर्ती अधिनियम, जो केवल सार्वजनिक न्यासों

पर लागू होते थे, इस अधिनियम में परिभाषित किसी भी न्यास पर लागू नहीं होंगे। यदि पारिवारिक देवता की पूजा हेतु निर्मित निजी विन्यास को छोड़कर अन्य निजी न्यास भी “धार्मिक न्यास” की परिभाषा में सम्मिलित होते, तो उन निजी न्यासों के संदर्भ में यह उपधारा पूर्णतः निरर्थक या अनावश्यक हो जाती, क्योंकि पूर्ववर्ती अधिनियम उन पर कभी लागू ही नहीं होते थे। स्पष्ट संकेत यह है कि अधिनियम में परिभाषित सभी न्यास सार्वजनिक स्वरूप के हैं, और इसी कारण यह आवश्यक हुआ कि पूर्ववर्ती अधिनियमों के प्रयोग को, जो अन्यथा ऐसे न्यासों पर लागू होते, अपवर्जित किया जाए। यदि धारा 4 की उपधारा (5) का अभिप्राय, जैसा कि बिहार राज्य के महाधिवक्ता द्वारा प्रतिपादित किया गया है, यह होता कि परिभाषा प्रावधान के अंतर्गत सम्मिलित अनेक न्यासों में से केवल कुछ को ही पूर्ववर्ती अधिनियमों के संचालन से अपवर्जित किया जाए, तो ‘किसी भी’ शब्द का प्रयोग हमें विशेष रूप से अनुपयुक्त प्रतीत होता है। धारा 4 की उपधारा (5) को बिहार अधिनियम सं० 16/1954 द्वारा संशोधित किया गया था। संशोधन से पूर्व यह इस प्रकार था;

“धारा 4(5) — धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1863 तथा दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 92, बिहार राज्य के किसी भी हिंदू धार्मिक न्यास पर लागू नहीं होगी।”

संशोधन से पूर्व उपधारा (5) में परिभाषा प्रावधान का कोई उल्लेख नहीं था; उसमें केवल यह कहा गया था कि दो पूर्ववर्ती अधिनियम बिहार राज्य के किसी भी हिंदू धार्मिक न्यास पर लागू नहीं होंगे। किन्तु संशोधित उपधारा में स्पष्ट रूप से परिभाषा प्रावधान का संदर्भ दिया गया है तथा यह कहा गया है कि वे दो पूर्ववर्ती अधिनियम, जो केवल सार्वजनिक न्यासों पर लागू होते हैं, अधिनियम में परिभाषित किसी भी न्यास पर लागू नहीं होंगे। हमारे मत में, धारा 4 की उपधारा (5) के माध्यम से स्वयं विधायिका ने परिभाषा प्रावधान के वास्तविक क्षेत्र एवं प्रभाव का संकेत स्पष्ट रूप से प्रविन्यास किया है।

द्वितीयतः, यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि जब विधायिका के समक्ष ऐसे पूर्ववर्ती अधिनियम विद्यमान थे, जो केवल सार्वजनिक न्यासों पर लागू होते थे, तब उसने परिभाषा प्रावधान में 'उद्देश्य' शब्द के पूर्व 'सार्वजनिक' शब्द का प्रयोग क्यों नहीं किया? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका सामना किया जाना आवश्यक है। इसका उत्तर, हमारे विचार में, यह है कि पूर्त न्यास, अंग्रेजी तथा भारतीय दोनों विधियों के अंतर्गत, सार्वजनिक न्यास होते हैं; इंग्लैंड में धार्मिक न्यास, पूर्त न्यास का ही एक रूप होने के कारण, सार्वजनिक होता है, किन्तु भारत में हिंदू विधि के अनुसार धार्मिक न्यास सार्वजनिक अथवा निजी, दोनों प्रकार का हो सकता है। परन्तु निजी धार्मिक न्यास का सर्वाधिक सामान्य एवं प्रचलित रूप वही है, जो पारिवारिक देवता की पूजा के लिए निर्मित होता है, जिसमें जनता की कोई रुचि नहीं होती। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के निजी धार्मिक न्यास अत्यंत दुर्लभ हैं और उनकी कल्पना करना भी कठिन है। हिंदू विधि में सार्वजनिक एवं निजी दानों के मध्य अंतर का उल्लेख करते हुए सर दिनशां मुल्ला ने अपनी 'हिंदू विधि के सिद्धांत' (11 वीं संस्करण, पृष्ठ 529) में कहा है—

“धार्मिक विन्यास या तो सार्वजनिक होते हैं या निजी। सार्वजनिक विन्यास में समर्पण जनता के उपयोग अथवा लाभ के लिए होता है। जब संपत्ति को किसी पारिवारिक देवता की पूजा के लिए अलग रखा जाता है, जिसमें जनता की कोई रुचि नहीं होती, तब वह विन्यास निजी होता है।”

स्पष्टतः, परिभाषा प्रावधान में उपर्युक्त निजी विन्यास के विशिष्ट उदाहरण का ही उल्लेख किया गया है। यह भी महत्वपूर्ण है कि पारिवारिक देवता की पूजा हेतु निर्मित विन्यास का अपवर्जन उस विशेषणात्मक वाक्यांश पर आधारित है, जो उसके पश्चात् आता है, अर्थात् “जिसमें जनता की कोई रुचि नहीं होती।” दूसरे शब्दों में, यह अपवर्जन हिंदू विधि में सार्वजनिक एवं निजी न्यास के मध्य मूलभूत अंतर पर आधारित है। यदि कसौटी यह है कि जनता अथवा उसका कोई

वर्ग उस न्यास में रुचि नहीं रखता, तो ऐसी कसौटी हिंदू विधि में सभी निजी न्यासों की विशेषता है। यह भी दर्शाता है कि ऐसा भी संभव है कि किसी पारिवारिक देवता की पूजा हेतु निर्मित न्यास में जनता की रुचि हो; ऐसे मामलों में वह न्यास प्रारंभ में निजी होता है, किन्तु कालांतर में जनता के लिए खुला हो जाता है। इससे भी यह संकेत मिलता है कि परिभाषा का उद्देश्य केवल सार्वजनिक न्यासों को ही सम्मिलित करना था।

अब हम अधिनियम के कुछ अन्य प्रावधानों की ओर आते हैं, जिनका पूर्व में उल्लेख किया गया है। धारा 29(1), जिसमें यह कहा गया है कि किसी धार्मिक न्यास का पर्यवेक्षण संस्थापक अथवा किसी सक्षम न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किसी समिति या संघ में निहित हो सकता है, सामान्यतः केवल सार्वजनिक न्यास के संदर्भ में ही उपयुक्त प्रतीत होती है। धारा 30(1), जिसमें *सिप्रेस* के सिद्धांत का समावेश है, यह प्रावधान करती है कि *किसी धार्मिक न्यास का मूल उद्देश्य समाप्त हो जाने* या उसकी प्राप्ति असंभव हो जाने की स्थिति में, कोई भी हिंदू समिती की उस शक्ति के प्रयोग हेतु आवेदन कर सकता है, जिसके द्वारा यह निर्धारित किया जाए कि न्यास की निधि, संपत्ति अथवा आय का उपयोग किस उद्देश्य के लिए किया जाएगा। यह प्रावधान भी निजी न्यास के संदर्भ में अनुपयुक्त है, क्योंकि प्रत्येक हिंदू किसी निजी न्यास में हित रखने वाला नहीं हो सकता, जिससे उसे ऐसा आवेदन प्रस्तुत करने का *सुने जाने का अधिकार* प्राप्त हो। अतिरिक्त रूप से, यह कल्पना करना भी कठिन है कि किसी हिंदू निजी देवोत्तर का उद्देश्य विफल हो जाए, क्योंकि देवता अमर माने जाते हैं। यदि मूर्ति खंडित हो जाए, खो जाए अथवा चोरी हो जाए, तो दूसरी मूर्ति की प्रतिष्ठा की जा सकती है, और यह नहीं कहा जा सकता कि मूल उद्देश्य समाप्त हो गया है। धारा 32 अधिनियम की एक महत्वपूर्ण धारा है, जो धार्मिक न्यासों के समुचित प्रशासन हेतु योजनाएँ निर्धारित करने की शक्ति समिती को प्रविन्यास करती है। यह धारा यह प्रावधान करती है कि समिती इस शक्ति का प्रयोग स्वयं की

पहल पर अथवा किसी न्यास में हित रखने वाले दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा किए गए आवेदन पर कर सकता है। इस धारा की भाषा, जहाँ तक “किसी न्यास में हित रखने वाले दो या अधिक व्यक्तियों” का संबंध है, दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 92 की भाषा के समान है। यह समझना कठिन है कि किसी निजी न्यास के मामले में ऐसी योजना निर्धारित करने हेतु यह आवश्यक क्यों हो कि न्यास में हित रखने वाले दो या अधिक व्यक्ति आवेदन प्रस्तुत करें। निजी अथवा पारिवारिक देवोत्तर में लाभार्थी एक सीमित एवं निश्चित वर्ग के व्यक्ति होते हैं, जैसे कि किसी परिवार के सदस्य। यदि न्यासी अथवा शेबायत कुप्रबंधन, अपव्यय, देवोत्तर संपत्ति के अनुचित हस्तांतरण अथवा अन्य कर्तव्यों के उल्लंघन का दोषी हो, तो ऐसे दुरुपयोगों के निवारण हेतु वाद निश्चित रूप से दायर किया जा सकता है। देश की सामान्य विधि के अंतर्गत, विन्यास के संस्थापक अथवा उसके उत्तराधिकारी में से कोई भी व्यक्ति देवोत्तर के समुचित प्रशासन के लिए, पुराने न्यासी को हटाने तथा नए न्यासी की नियुक्ति हेतु वाद दायर करने के लिए सक्षम होता है। ऐसे प्रकरण में यह आवश्यक नहीं है कि वाद संस्थित करने हेतु न्यास में हित रखने वाले दो या अधिक व्यक्ति सम्मिलित हों। “दो या अधिक व्यक्तियों” की यह शर्त केवल सार्वजनिक न्यास के लिए ही उपयुक्त है, क्योंकि सार्वजनिक न्यास जनसामान्य के हित से संबंधित विषय होता है। अधिनियम की धारा 48 भी दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 92 के समरूप है और धारा 92 के संचालन को, अधिनियम में परिभाषित न्यासों से अपवर्जित करने का एक कारण यह है कि अधिनियम में ही धारा 92 के समान प्रावधान विद्यमान हैं। यह धारा भी निजी न्यासों की अपेक्षा सार्वजनिक न्यासों के लिए अधिक उपयुक्त है। वास्तव में, अधिनियम, जैसा कि उसकी प्रस्तावना में उल्लेखित है, बिहार राज्य में हिंदू धार्मिक न्यासों के उत्तम प्रशासन तथा उनसे संबंधित संपत्तियों के संरक्षण एवं संरक्षणार्थ प्रावधान करता है, और इस उद्देश्य से कुछ पूर्ववर्ती अधिनियमों, जैसे धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1863; धार्मिक विन्यास अधिनियम,

1890; पूर्त और धार्मिक न्यास अधिनियम, 1920; तथा दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908, को या तो संशोधित किया गया है अथवा उनके संचालन को अपवर्जित किया गया है। उक्त सभी पूर्ववर्ती अधिनियम केवल सार्वजनिक न्यासों से संबंधित थे, और यदि यह अभिप्राय होता कि अधिनियम निजी न्यासों पर भी लागू होगा, तो अपेक्षित था कि यह अभिप्राय स्पष्ट एवं निर्विवाद भाषा में व्यक्त किया जाता। इसके विपरीत, हम पाते हैं कि यद्यपि धारा 2(1) का परिभाषा प्रावधान कुछ व्यापक भाषा में व्यक्त है, तथापि धारा 4 की उपधारा (5) यह स्पष्ट कर देती है कि परिभाषा प्रावधान का वास्तविक क्षेत्र एवं प्रभाव क्या है।

उपर्युक्त कारणों से हम यह मानते हैं कि परिभाषा प्रावधान के अंतर्गत निजी न्यास सम्मिलित नहीं हैं तथा अधिनियम एवं उसके प्रावधान ऐसे न्यासों पर लागू नहीं होते।

अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने वैकल्पिक रूप से यह तर्क भी प्रस्तुत किया है कि यदि अधिनियम निजी न्यासों पर लागू माना जाए, तो उसके अनेक प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 19(1)(एफ) के अधीन नागरिकों को प्रदत्त मौलिक अधिकार का उल्लंघन करेंगे, क्योंकि ऐसे निजी न्यासों के न्यासियों पर लगाए गए प्रतिबंध, जिनमें जनता की कोई रुचि नहीं होती, अनुच्छेद 19 की उपधारा (5) के अर्थ में सामान्य जनहित में युक्तिसंगत प्रतिबंध नहीं माने जा सकते। उच्च न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए अंग्रेजी विधि के उस सिद्धांत को अपनाया कि जहाँ किसी पूर्त निगम का संस्थापक कोई निजी व्यक्ति होता है, वहाँ वह तथा उसके उत्तराधिकारी विधि की दृष्टि में निरीक्षक बन जाते हैं, और जब ऐसे उत्तराधिकारी समाप्त हो जाएँ अथवा अयोग्य हों, तब उनकी शक्तियाँ क्राउन अथवा राज्य में निहित हो जाती हैं; अतः यह सामान्य जनहित में है कि राज्य, निजी न्यासों के प्रशासन पर भी उसी प्रकार पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण रखे, जैसा कि सार्वजनिक न्यासों के मामले में होता है। उच्च न्यायालय के इस दृष्टिकोण का हमारे समक्ष गंभीर रूप से प्रतिवाद किया गया है, और अपीलकर्ता के विद्वान

अधिवक्ता ने यह प्रतिपादित किया है कि अंग्रेजी विधि के उक्त सिद्धांत को अपनाने का कोई औचित्य नहीं है, विशेषकर अंग्रेजी एवं हिंदू विधि के मध्य निजी धार्मिक न्यासों के संबंध में विद्यमान मौलिक अंतर के परिप्रेक्ष्य में। इस संबंध में उन्होंने डॉ. मुखर्जी के निम्नलिखित अभिमत की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है (हिंदू धार्मिक एवं पूर्त न्यास विधि, 1952 संस्करण, पृष्ठ 393):

“अंग्रेजी विधि में सभी दानात्मक निगमों के साथ एक ‘निरीक्षणात्मक’ शक्ति संलग्न रहती है। निरीक्षक को निगम के सदस्यों के मध्य विवादों का निपटारा करने, उनके कार्यों का निरीक्षण एवं विनियमन करने तथा सामान्यतः विन्यास के प्रशासन में होने वाले सभी दुरुपयोगों एवं अनियमितताओं को सुधारने का अधिकार होता है। विधि संस्थापक को किसी दानात्मक संस्था की स्थापना के लिए विनियम बनाने की पूर्ण शक्ति प्रविन्यास करती है, और इन शक्तियों में निरीक्षकों की नियुक्ति का अधिकार भी सम्मिलित होता है। इंग्लैंड की विधि के अनुसार, सन् 1926 से पूर्व, यदि किसी पूर्त निगम का संस्थापक कोई निजी व्यक्ति होता था, तो वह तथा उसके उत्तराधिकारी स्वतः ही निरीक्षक बन जाते थे। निरीक्षक के अधिकारों का उत्तराधिकारियों में हस्तांतरण अब संपदा प्रशासन अधिनियम, 1925 द्वारा समाप्त कर दिया गया है, और यह स्पष्ट नहीं है कि संस्थापक द्वारा नियुक्ति न किए जाने की स्थिति में निरीक्षक कौन होगा। संभवतः ऐसे अधिकार क्राउन में निहित हो जाते हैं, जैसा कि उस स्थिति में होता था जब संस्थापक के उत्तराधिकारी समाप्त हो जाते थे, उपलब्ध नहीं होते थे अथवा उत्तराधिकारी असमर्थ होता था।”

उन्होंने आगे यह तर्क दिया कि अंग्रेजी विधि में स्थिति जो भी हो, मौलिक अधिकार की गारंटी का निर्धारण संविधान के अनुच्छेद 19 की शर्तों के आधार पर ही होगा और इस गारंटी को अंग्रेजी विधि के कृत्रिम सिद्धांतों को आरोपित करके सीमित नहीं किया जा सकता।

परिभाषा प्रावधान की व्याख्या, जिसे धारा 4(5) तथा अधिनियम के अन्य प्रावधानों के साथ पढ़ा गया है, के संबंध में हमारे निष्कर्ष के परिप्रेक्ष्य में, हम यह आवश्यक नहीं समझते कि पूर्ववर्ती कंडिका में उल्लिखित प्रतिवादों पर अंतिम निर्णय दिया जाए; केवल इतना कहना पर्याप्त है कि यदि अधिनियम को निजी न्यासों पर भी लागू माना जाता, तो अधिनियम के अनेक प्रावधानों की संवैधानिक वैधता का एक गंभीर प्रश्न निस्संदेह उत्पन्न होता।

हमारे इस निष्कर्ष के आधार पर कि अधिनियम निजी न्यासों पर लागू नहीं होता, अपीलकर्ता अपनी अपील में सफल होने का अधिकारी है। उच्च न्यायालय ने यह कहा है कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री इस प्रश्न के निर्णय हेतु पर्याप्त नहीं है कि सलौना स्थल तथा महंत की संपत्तियां सार्वजनिक स्वरूप के न्यास का गठन करती हैं या नहीं। तथापि, यह प्रश्न पूर्व में एक विवादित वाद का विषय रह चुका है और अपीलकर्ता ने प्रथम अपील सं० 10/1941 में यह घोषणा प्राप्त की थी कि सलौना स्थल तथा उससे संबंधित संपत्तियां सार्वजनिक न्यास का गठन नहीं करतीं। उत्तरदाताओं उस वाद के पक्षकार नहीं थे, अतः वे उस निर्णय से बाध्य न भी हों; किन्तु उत्तरदाताओं की ओर से न तो कोई शपथपत्र प्रस्तुत किया गया और न ही ऐसा कोई साक्ष्य रखा गया जिससे यह प्रदर्शित हो सके कि स्थिति उस घोषणा से भिन्न है, जो उच्च न्यायालय द्वारा की गई थी। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर टिप्पणी की कि अपीलकर्ता ने अपने पास उपलब्ध सभी दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किए। हमारे समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें उन दस्तावेजों को साक्ष्य के रूप में ग्रहण करने का अनुरोध किया गया है, जिन पर प्रथम अपील सं० 10/1941 में उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया गया था। हम यह नहीं मानते कि इस प्रकरण की परिस्थितियों में उन साक्ष्यों का पुनः परीक्षण आवश्यक है। जब तक प्रथम अपील सं० 10/1941 में उच्च न्यायालय द्वारा की गई घोषणा विद्यमान है और उसके विपरीत कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है, तब तक अपीलकर्ता यह कहने का अधिकारी है

कि सलौना स्थल तथा उससे संबंधित संपत्तियां सार्वजनिक न्यास का गठन नहीं करतीं और अधिनियम तथा उसके प्रावधान उन पर लागू नहीं होते।

हमारा ध्यान अधिनियम की धारा 43 की ओर आकर्षित किया गया है, जिसे अधिनियम सं० 17/1956 द्वारा संशोधित किया गया है। उक्त धारा में, *अन्य बातों के साथ*, यह प्रावधान किया गया है कि किसी अचल संपत्ति के न्यास संपत्ति होने या न होने के संबंध में सभी विवादों की जाँच, राज्य सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना के माध्यम से नियुक्त प्राधिकारी द्वारा, स्वयं की पहल पर अथवा आवेदन के आधार पर की जाएगी। धारा 43 की संवैधानिक वैधता के संबंध में कोई अभिमत व्यक्त किए बिना, हम केवल यह इंगित करते हैं कि अधिनियम की उक्त धारा (संशोधन से पूर्व अथवा पश्चात) के अधीन अपीलकर्ता के विरुद्ध सलौना स्थल तथा उससे संबंधित संपत्तियों के संबंध में कोई निर्णय नहीं दिया गया है। उत्तरदाताओं के लिए यह खुला रहेगा कि वे विधि के अनुसार उपलब्ध उपायों का सहारा लेकर सक्षम प्राधिकारी के समक्ष यह निर्धारण कराएं कि संबंधित न्यास सार्वजनिक न्यास है।

अतः हम इस अपील को स्वीकार करते हैं, दिनांक 13 सितंबर, 1954 को उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश को अपास्त करते हैं, तथा उपयुक्त रिट जारी करने का निर्देश देते हैं, जिसके द्वारा उत्तरदाताओं समिती के उस आदेश को अभिखंडित किया जाए, जिसके अंतर्गत अपीलकर्ता को सलौना स्थल की संपत्तियों के संबंध में आय एवं व्यय का विवरण प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था, तथा उत्तरदाताओं को अपीलकर्ता के सलौना स्थल तथा उससे संबंधित संपत्तियों के प्रबंधन के अधिकार में हस्तक्षेप करने से निषिद्ध किया जाए, जब तक कि उत्तरदाताओं यह आवश्यक निर्धारण प्राप्त न कर लें कि सलौना स्थल एक सार्वजनिक न्यास है। अपीलकर्ता समस्त व्यय का अधिकारी होगा।

अपील स्वीकृत।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।